International Journal of Applied Research 2017; 3(2): 477-485

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(2): 477-485
www.allresearchjournal.com
Received: 21-12-2016
Accepted: 24-01-2017

डॉ॰ नीलम ऋषिकल्प
एसोसिएट प्रोफ़ेसर, रामलाल आनद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Correspondence
डॉ॰ नीलम ऋषिकल्प
एसोसिएट प्रोफ़ेसर, रामलाल आनद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

भारतीय सांस्कृतिक लोक (जायसी का पद्मावत)

डॉ॰ नीलम ऋषिकल्प

जायसी साहित्य का अध्ययन करते समय लोक का विस्तृत आयाम यकायक खुलता जाता है। चेतना का विश्लेषण समाज के संदर्भ में या व्यक्ति के संदर्भ में हो जाता है किंतु साहित्यकार के संदर्भ में चेतना को केवल समाज या व्यक्ति के संदर्भ में बाँधना उसका अवमूल्यन होगा। इसीलिए मुझे लगा कि जायसी की कविता का मूल्यांकन सामाजिक दृष्टि से कुछ अधिक लोकमानवीय दृष्टि से किया जाय तभी उसे उचित न्याय मिल सकेगा और मेरा अध्ययन का दाय भी पूरा हो सकेगा। यों भी देखें तो समाज तो लोक के विशिष्ट भूभाग में रहने वाले प्राणियों द्वारा संचालित है जबकि लोक, समाज की चिंता करने वाला ऐसा व्यापार फलक है जो व्यक्ति के मात्र व्यक्ति के निजी व्यापारों से परे चराचर और गोचर-अगोचर की चिंता में व्यग्र मनुष्य का निरंतर उदात्तीकरण करता हुआ उसकी संवेदना का परिष्कार करता चलता है जो कि साहित्यकार को समाज चेतना से परे लोक चेतना के फलक पर प्रतिष्ठित करता है। जहाँ उसकी कविता की गंध सुवास बनकर कालजयी हो जाती है।

जायसी मध्ययुग के बड़े कवि हैं, जायसी सूफी संत हैं, वे सिद्ध फकीर हैं, जायसी प्रेम की पीर के गायक हैं, वे हिंदी के पहले विधिवत कवि हैं, वे अवधी के श्रेष्ठ कवि हैं, जैसे शास्त्रीय विवेचनों को जानने के बाद भी लगता है कि जायसी में कुछ और गहरा है। हम यदि उस गहराई तक पहुँच सकें तो शायद स्वयं को जायसी के और अधिक निकट पा सकते हैं, जहाँ जायसी के लिए कविता की अर्थवत्ता 'फूल मरै पे मरै न बासू' में अर्थवान होती है। यहाँ मुझे जायसी उन 'रससिद्ध कवियों' की श्रेणी में खड़े दिखाई देते हैं जिनका उद्देश्य केवल कविता करना ही था। पद्मावत की प्रबंध कल्पना को देखकर भी ऐसा लगता है कि जायसी के मन में निश्चय ही प्रबंध काव्य रचने की इच्छा थी। जैसा कि वे लिखते हैं –

और मन जान कवित उस कीन्हा, मकु यह रहै जगत में चीन्हा जायसी ने इसे रचते समय 'भाषाबद्ध या स्वान्त सुखाय' नहीं कहा, न ही कविता के बारे में अपनी समझ पर कमज़ोरी दिखाई अपितु इस कविता की पहचान जगत् में बनेगी इसका उन्हें पूरा भरोसा था। पद्मावत की रचना के पीछे जायसी का निहितार्थ आचार्य विश्वनाथ और दण्डी के काव्यादर्शों पर आधारित काव्य की रचना लगता है इसकी कथा सर्गबद्ध है, इसका नायक धीरोदात्त राजा है, इसमें काव्य रस है, प्रकृति वर्णन है और मूलकथा के साथ-साथ अवान्तर कथा प्रसंग भी निहित है। भाषा का, काव्य सौष्ठव का उन्हें पूरा ज्ञान है इसीलिए वह इस काव्य की रचना दोहे और चौपाई में लयबद्ध कर रचते हैं।

'आदि अन्त जस कथा अहैं, लिखि भाषा चौपाई कहैं।'

दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता इस रचना का काव्य प्रयोजन है। जिसमें 'काव्यं यशसेऽथेकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये' का यश से भरा अलक्षित प्रयोजन छिपा हुआ है। जायसी जानते हैं यश को ख़रीदा-बेचा नहीं जा सकता है। लेकिन जो यश के लायक है उसकी सुगंध उस पुष्प जैसी है जिसके मुरझा जाने पर भी सुगंध विधिवत बनी रहती है यही सगुंध जायसी का काव्य प्रयोजन है –

'धनि सो पुरख जस कीरत जासू, फूल मरै पै मरै न बासू'
कई न जगत जस बेचा, के ई लीन्ह जस मोल।
जो यह पढ़ै कहानी, हम सँवरे दुह बोल।।''

तीसरी विशेषता पद्मावत की जायसी की उस समय की ओर संकेत करती हैं, जहाँ वे जानते है कि रचना की सार्थकता पाठकों की पठनीयता पर निर्भर करती है। पठनीयता भी ऐसी जो स्मृति का अंग बन जाए। जायसी ने जिस तरह इस ऐतिहासिक कहानी को अपनी कविता की कल्पना से लोक की स्मृति में पहुँचाया उसके लिए उन्होंने अथक परिश्रम किया वहाँ न इतिहास रहा, न पात्र रहे न केवल कहानी भर रह गयी –

'कोई न रहा जग कहानी।'

चौथी और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता इस काव्य की वह दार्शनिक मनोभूमि है जहाँ 'ईश्वर सत्य और जगत मिथ्या है।' पर जगत की नशवरता मनुष्य को नीरस नहीं होने देती। क्योंकि जगत की नश्वरता की स्थापना सतही नहीं है, अपितु पूरे जीवन को जीती है, भोगती है, उससे टकराती है, तब निष्कर्ष है। नश्वरता की नीरसता यहाँ केवल शैतान)उलाउद्दीन (को व्यापती है इसीलिए जायसी किसी ओर से न कहलाकर यह वाक्य भी उसी के मुख से कहलाते हैं –

'छार उठाइ लीन्ह एक मूठी, दीन्ह उड़ाइ पिरिथीमी झूठी।'

इस झूठी पृथ्वी पर जायसी को अपनी कविता, अपनी खुशबू बनी रहने की चिंता है अन्यथा जायसी के लिए सूफी दरवेश बन जाना कोई कठिन बात न थी। उनके लिए इससे बड़ी चुनौती या उपलब्धि मनुष्य लोक की जानकारी या पहचान थी। जिस लोक से गुज़रते हुए उन्हें उसी में सम्मिलित हो जाना था। अकारण नहीं था कि जायसी ने जिस लोक को रचने का जोख़िम उठाया, जिस लोक, समाज और रीति-रिवाजों को कविता में बांधा वह उन्हें रक्त की गाढ़ी लेई से जोड़ना पड़ा। इतना ही नहीं उस लोक के प्रेम को उन्होंने नेत्रों के जल से सींचा तभी वह पद्मावत की रचना कर सकें –

'जोरी लाइ रकत के लई, गाढ़ी प्रीति नैन जल भेइ।'

यहाँ हम कवि के यश वाले काव्य प्रयोजन तक स्वयं को सीमित करें तो कविता के साथ न्याय नहीं हो सकेगा। जायसी के समक्ष जीवन में 'प्रेम' की चुनौती है। इस प्रेम को पाने के लिए रत्नसेन चित्तौड़ से सिंघलगढ़, सिंघलगढ़ से चित्तौड़ गढ़, चित्तौड़गढ़ से दिल्ली वहाँ से फिर चित्तौड़ !जीवन भर इसी प्रेम को पाने के लिए रत्नसेन अपना तन, मन, धन, सब कुछ दाँव पर लगा देता है। अपने प्रेम के आगे उसे कुछ दिखाई नहीं देता –

> 'जाकहँ होइ बार एक लाहा, रहै न ओहिबिनु, ओही चाहा
> अरथ दरब सो देई बहाई। की सब जाहु, न जाहु पियाई।।

जायसी प्रेम की इस अथाह गहराई के बल पर ही भरोसा रखते हैं कि भले ही जायसी किसी को आकर्षित न करे पर जायसी की यह प्रेम कहानी जो पढ़ेगा उसी को रूला देगी –

> मुहम्मद कवि जो प्रेम का ना तन रक्त न माँसु।
> जेई मुख देखा तेई हँसा सुना तौ आए आँसू।।

जायसी की राग से भरी इस कविता में वैराग्य के लिए कहीं गुंजाइश नहीं है। अपितु वैराग्य का अर्थ भी गहरी आसक्ति है उस आसक्ति के अतिरिक्त चित्त और कहीं नहीं टिकता, भले ही वह अलाउद्दीन का चित्त की क्यों न हो

> मन ह्वे भँवर भवै वैरागा, कँवल छाँड़ि चित्त और न लागा।

प्रेम की इसी परकाष्ठा तक पहुँचने पहुँचाने के लिए यह कविता गहरे डूबती-डूबोती जाती है। इसीलिए जायसी की कविता कोरा आदर्श नहीं लगती है, यह कविता किसी उपदेश या धर्म की स्थापना भी नहीं करती, किसी दर्शन की व्याख्या के लिए ही केवल यह कहानी गढ़ी गयी हो तो ऐसा भी नहीं है अपितु इसमें सहज जीवन की भाँति सब कुछ घटता चला जाता है। यदि हम तसव्वुफ़ की चहारदीवारी से बाहर निकले तो पायेंगे जायसी ने जिस समाज और लोक को अपने आसपास देखा उसकी जीवंतता को धर्म, दर्शन की संकीर्णता से निकालकर ऐसी कहानी में पेंट कर डाला जिसमें कथा और पात्र सब गायह हो गए पेंटिंग भर रह गयी-

> कहाँ सो रत्नसेनि अस राजा, कहाँ सुआ असि बुधि उपराजा।'
> कहाँ उलाउद्दीन सुलतानू, कहाँ राघौ जेहि कीन्ह बखानू।
> कहँ सुरूप वदुभावति रानी, कोई न रहा न जग रही कहानी।'

इन पंक्तियों को पढ़कर लगता है कि जायसी की कथा का प्रस्थान बिंदु न केवल ईश्वर है, न अध्यात्म है, न किसी संप्रदाय की स्थापना करना है क्योंकि वह जानते हैं, मठ संप्रदाय की स्थापना करने का अर्थ है समाज को संकीर्णताओं और सत्य-असत्य के घेरे में उलझ जाना है। जैसा कि विजयदेव नारायण साही लिखते हैं -'हिंदुस्तान में कई बार क्रांतिकारी आवाज़ों के संप्रदायों और अखाड़ों में बदल जाने की आवृत्ति बार-बार हुई है।' जायसी की निर्मल दृष्टि में केवल मनुष्य की चिंता है। मनुष्य भी असाधारण नहीं है, अपितु वह साधारण मनुष्य, जो सामान्य जीवन में उठता, बैठता, चलता, सीखता, प्रेम करता, गृहस्थी चलाता, युद्ध में वीरता और कायरता दिखाता है। राज्य स्थापित करता हैं छल कपट करता है। बेईमानी भी करता है। शैतान की सोच राजा अकेला नहीं अपितु अपने नगरवासियों, पूरे वैभव के साथ जन्म लेता है विवाह होता है राग-द्वेष, प्रेम की पराकाष्ठा पर पहुँचता है। युद्ध में हारता-जीतता है संघर्ष

करता है। उसके साथ सारा लोक जीवन के संयोग-वियोग, मैत्री स्मृतियाँ सब कुछ भोगता है।

जायसी की लोक चेतना नगर और ग्रामीण दो संस्कृतियों के रूप में हमारे सामने उभरकर आती है जिसमें एक और वैभवशाली नगर है, हाट-बाज़ार हैं, पनिहारिनों का सौंदर्य है, वेश्याओं का सौंदर्य है दूतियाँ। जुआ, शतरंज, चौगान है। पद्मावत के प्रारंभ में सिंहल लोक का वर्णन किसी दूसरे लोक का वर्णन न होकर भारतीय लोक का वह यथार्थ है जिसके रंग में रंगकर ही यह सूफी विचारक अपनी विशुद्ध प्रेमाख्यानक परंपरा को स्थापित करने में सफल हुए। जायसी तो इस संस्कृति से सीधे जुड़े हुए थे, इसीलिए वह नगर संस्कृति में भी लोकव्यवहार का पूरी कुशलता से निर्वाह करने में सफल होते हैं –

> पानि भरै आवहिं पनिहारी, रूप सरूप पद्मिनी नारी
> पदुमगंध तिन्ह अंग बसाहीं, भँवर लागि तिन्ह संग फिराहीं
> लंक सिंघनी, सारंग नैनी, हंस गामिनी कौकिल बैनी।।

सूफ़ियों का रूमानी लोक शीघ्र ही आध्यात्मिकता की ओर भी संकेत करता है इसीलिए यह सामान्य वर्णन उस असामान्य सत्ता की ओर भी संकेत करता है जिस पर यह सृष्टि (कथा) केंद्रित है –

> 'कनक हाट सब कुहकुँह लीपी, बैठ महाजन सिंघल दीपी
> सौन रूप भल भयउ पसारा। धवलसिरी पोतहि घरबारा।।'

हाट की ध्वनि का अर्थ भी दूर तक जाता है किंतु लौकिक यथार्थ से काटकर वह कोई ऐसा चमत्कार उत्पन्न नहीं करता जो आदर्श हाट का या जीवन से दूरी का वर्णन करता हो -जीवन में जुए का विशिष्ट प्रसंग है अतिश्योक्ति नहीं कि जीवन ही जुआ है जायसी बड़े ही सहज ढंग से यहाँ जुआ खेलने का वर्णन किया है –

> केत खिलार हारि तेहि पासा। हाथ झार उठ चलहिं निरासा।

जायसी ने जिस सिंघल लोक की रचना की है वह भारतीय नगर सभ्यता का एक सजीव चित्र है यदि हम प्राचीन भारतीय नगरों का वर्णन देखें तो उनकी बनावट लगभग ऐसी ही मिलती है –

> 'गढ़ पर बसहिं चार बढ़ती। असुपति गजपति, भूनर पती।
> सब धौराहर सोने साजा। अपने-अपने घर सब राजा।।
> मंदिर मंदिर फुलवारी, चोवा चंदन बास।
> निसिदिन रहे वसंत वहें, छवौ ऋतु बारह मास।

सर्वत्र बिखरा हुआ वसंत, आनंद के इस लोक के सम्मुख तुलसी के रामराज्य का स्मरण हो आना स्वाभाविक है जहाँ -'दैहिक दैविक भौतिक तापा, राम राज नहिं काहूहिं व्यापा।' तुलसी का रामराज्य भले ही आदर्श कल्पना का रहा हो, किंतु जायसी ने सिंघलगढ़ के वर्णन में जिए सघन अंबराई वृक्ष, पक्षी कूप बावरी, मानसरोवर, पनिहारी फल-फूल कनक हाट, सिंगार हाट फूल हाट, राजसभा, हस्तिशाला तथा राजा के कुरंग आदि हैं सब तत्कालीन नगरों का सजीव चित्र हमारे सामने उपस्थित करता है। जायसी का सिंहलगढ़ हो या चित्तौर गढ़ लोक स्मृतियों के बाहर की चीज़ नहीं। जायसी केवल घोड़ों के रंगों की विविधता ही बताने लगते हैं तो रंगों का एक पूरा संसार कल्पना में सजीव हो उठता है। नीले, बादामी, मेंहदी के से रंग वाले, भौंरे के रंग के, पके ताड़ के फल के -से रंग वाले और जाने कितने रंग वाले, घोड़ों की गतियों का सौंदर्य रचने में पीछे नहीं है।

पुनि बांधे रजवार तुरंगा। का वरनौं जस उन के रंगा।
लील समद चाल जग जाने। हांसुल भौंर गियाह बखाने।।
हरे, कुरंग महुअ, बहुं भाँति, गरर, कोकोइ बुलाइ सुपाँति।।

जायसी ने यह जानकारी कहीं से प्राप्त की हो कथा में जिस तरह से उन्होंने इसे खपाया है उससे जायसी की गहरी सांस्कृतिक जानकारी का परिचय अवश्य मिलता है। यह धन धान्य से संपन्न सिंघल गढ़, चित्तौरगढ़ कवि की लोक चेतना का पर्याय तो है ही इसके साथ ही साधनात्मक संकेतों को अपनी आँखों से ओझल नहीं होने देता –

पथिक जौं पहुँचै सहि धाम। दुख बिसरै सुख होई बिसरामू
जिन्ह वह पाई छाँह अनूपा। बहुरि न आइ सहि यह धूपा।

अंतिम पंक्ति में कवि की दृष्टि आध्यात्मिकतर की ओर चली गयी है। इस प्रकार के लौकिक प्रसंगों में अलौकिकता के संकेत को सूफ़ियों का रहस्यवाद कहा जाता है –

'कोई करै बैसाहना काहू केर बिकाइ,
कोई चला लाभ सौं कोई मूर गँवाइ।।'

चित्तौड़गढ़ के वैभवशाली हाट बाज़ार सभी प्रकार की वस्तुओं से संपन्न है। लेकिन इस सामंती व्यवस्था में 'धनी पाउ, निधनी मुख हेरा' कहकर जायसी पुनः उस लोक का स्मरण करा देते हैं जो इस सामती समाज के समांतर चल रहा है। भले ही उसे इस व्यवस्था के सुख वैभव न प्राप्त हो किंतु यह लोक उस सामंती व्यवस्था मंगलाचार और आनंदोत्सवों से संपन्न किए हुए है -पद्मावती के जन्म के अवसर पर छठी के अवसर पर छठी राति सुखमानी, रहस मूद सौं रैनि विहानी।' इसी का परिचायक है इसी प्रकार रत्नसेन के जन्म के अवसर पर पंडित का सामुद्रिक शास्त्र पढ़कर उसके भविष्य की घोषणा, भारतीय विश्वासों की परंपरा का निर्वाह करना है। नख-शिख वर्णन, रत्नसेन पद्मावती विवाह वर्णन में पद्मावती का सखियों के साथ जाकर बारात को देखना स्त्रियोचित उत्कंठा की परंपरा का निर्वाह जायसी ने किया है। इस विवाह वर्णन का प्रारंभ 'लगन धरा और रचा विआहू' से आरंभ होता है और पूरे वर्णन में लोक परंपराओं का निर्वाह कवि ने पूरी सजगता के साथ किया है। इसी वर्णन में पद्मावती-रत्नसेन और खंड में कई वर्णित परंपराएँ जायसी के लोक ज्ञान को दुहराती है जहाँ पद्मावति और रत्नसेन के लिए फूलों की सेज लगायी गयी है –

'चहुँ दिसि गेंडुवा और गलसुई, मौची पार भरी धुनि सई
विधि सो सेज रची कोहि जागू, को तहँ पौढ़ि मानी रस भोगू।'

जायसी के काव्य में लोक जीवन के रीति रिवाज़ आ जाना स्वाभाविक ही था, क्योंकि जायसी अवध के ठेठ गाँव के कवि हैं। दूसरे प्रेरक कारण सामंती समाज का इन इलाकों में सक्रिय योगदान रहा उसका प्रभाव भी जायसी की चेतना पर पड़ा। किंतु जायसी की चेतना के ग्राम अभावों ओर दयनीय दृश्यों को नहीं दर्शाते जिस रूप में आज हम ग्रामीण संस्कृति को जानते हैं उसके विपरीत जायसी की ग्रामीण चेतना काव्य प्रेरणा के रूप में सहायक होती है उनकी प्रकृति वनस्पति तीज-त्यौहार, लोकाचार, पर्व-उत्सव मानवीय संबंध सब चित्रवत् अंकित होते हैं। यहाँ जायसी अपने संवेदन के साथ उपस्थित हैं और इस दृष्टि से वह श्रेष्ठ ग्रामीण हैं जन्म से लेकर अंतिम संस्कार तक का उल्लेख जायसी में मिलता है। विवाह आदि के प्रसंग विधिवत पद्मावत में देखने को मिलते हैं जिसमें वधू का बारात देखना, वैदिक मंत्रोच्चार,

जयमाल, भाँवरि, दायज आदि। 'गाठि दूलह दूलहनि के जोरी दुओं जगत जो जाइ न छोरी।' यह प्रसंग पूरे समाज से संबद्ध है। जायसी का लोक उत्सव लोकोत्सवों में पूरी तन्मयता के साथ सम्मिलित होते हैं। वसंत, होली, दीपावली भारतीय समाज के प्रिय उत्सव हैं जिसका गहरा संबंध यहाँ की धन-धान्य से संपन्न संस्कृति से है। वसंत-होली मानो एक दूसरे के पूरक एवं समीपी उत्सव है जिनमें जीवन का उल्लास भरा हैं जायसी की लोक चेतना का पर्याय सिंघल गढ़ तो बारह महीने वसंत की तरह ही महकता रहता है –

मंदिर मंदिर फुलवारी, चोपा चंदन बास,
निसि दिन रहै बसंत तहँ, छवौ ऋतु मास।

पद्मावति सुआ भेंट खंड के अंतिम दोहे में भी वसंत का उल्लेख है –

आवे वसंत, जब तब मधुकर, तब वासु।

इसी के बाद बसंत खंड का आरंभ होता है। वनस्पति का नया शृंगार, पलाश प्रकार कवि ने ऋतुराज का समाजीकरण करके उसे सामंती समाज से बाहर निकाला है। वसंत ऋतु का उत्सव मनाने के लिए और पद्मावती की सखियों को समझाने के लिए संगीत के अनेक वाद्ययंत्र बनाये गये हैं -ढ़ोल, दुंदभी, भेरी, मादर, तून झाँझ आदि। वसंत केवल ऋतु परिवर्तन नहीं है अपितु जीवन का वह सर्वोत्तम क्षण है जिसकी परिणति होली में होती है। होली-दीपावली खेत खलिहानों में पकी फ़सल की ऐसी सूचनाएँ हैं जो वर्ष भर जीवन को ख़ुशियाँ से भरे रखती हैं जायसी की चेतना जानती है कि संपूर्ण जीवन को सदैव खुशियों से भरे रखने के लिए लोक और लोकोत्सवों से जुड़ना अनिवार्य है।

जायसी की लोक चेतना मध्यकालीन समाज की रूढ़ियों और अंधविश्वासों से भलीभाँति परिचित थी। वे जानते थे कि समाज किस तरह टोना-टोटका और शकुन अपशकुन में विश्वास रखता है। जायसी की सहज-सरल चेतना का नायक भी इस द्वंद्व से बच नहीं पाता है। जोगी खंड के आरंभ में ज्योतिषी रत्नसेन को टोकते हैं –

'गनक कहहिं करू गबन न आजू।
दिन लै चलहिं फरै सिधि काजूं।'

पर जायसी भी प्रेमासाधना इसे अस्वीकार कर देती है। रत्नसेन अगली ही पंक्ति में उत्तर देता है -प्रेम पंथ दिन धरी न देखा। तब देखें जब होई सरेखा। यहाँ कवि की प्रेममार्गी दृष्टि एक क्षण के लिए तो ज्योतिष का निषेध करती है, पर कुटुम्बियों से दूर होते ही, उसे मांगलिक शकुन दिखाई देने लगते हैं। दही, मछली, तरुणी का जल भरा कलश, सर्प के मस्तक पर खंजन आदि। मध्यकालीन प्रचलित विश्वासों का वर्णन जायसी इस ढंग से करते हैं जिससे उनके मार्ग ही हानि न हो। राजा गजपति संवाद खंड में जोगी रत्नसेन गजपति से कहता है –

जो रे जिओं लै बहुरौ, मरौं तो ओहि के द्वार।

जीवित रहा तो पद्मावती को लेकर ही लौटूंगा, यदि मरा तो उसी के द्वार पर मरूंगा। जायसी ग्राम्य जीवन का सर्वाधिक उपयोग लोक-जीवन से प्राप्त उपमानों तथा प्रकृति-दृश्यों से करते हैं। पद्मावत में लोकजीवन विशेषतया, ग्राम समाज के दृश्य और उपमान तो सीधे-सीधे आते हैं। पर हीरामन सुग्गा जिस ढंग से कथा कहता है उसकी परंपरा जायसी में लोक कथाओं से ली होगी जहाँ पशु-पक्षी पात्र बनकर अहम भूमिका निभाते हैं। प्राकृतिक दृश्यों को लें तो मानसरोदक खंड में पद्मावती सखियों के साथ जल स्नान के लिए जाती है यहाँ जायसी ऐसा वर्णन करते हैं मानो सौंदर्य की वाटिका ही चली आ रही है -'चमेली, कुंद, सुकेत, करना, सुदर्शन, गुलबकावली, मौलश्री, यूथिका, सेवंती, हरसिंगार, नागकेशर, चमेली आदि। फूलों के नाम वाली

पद्मावती की ये सखियों की चिंता का भी जायसी को पूरा ज्ञान है। मध्यकाल की पितृसत्तात्मक व्यवस्था के सामंती परिवेश में नारी समाज को स्वतंत्रता नहीं थी इसीलिए सास नन्द के कठोर व्यवहार में हँसने, बोलने पर नियंत्रण की बात कर सखियों की तस्वीर खींचती है।

> ए रानी मन देख विचारी। एहि नैहर रहना दिन चारी।।
> जौं लागै अहैं पिता कर राजू। खोलि लेहु जो खेलहु आजू।
> पुनि सासुर हम गवनव काली, कित हम मित यह सरबर बाली।
> कित आवन तुनि अपने हाथ, कित मिल के खेलव इक साथ।
> सासु ननद बोलिन्द जिउ लैंही, दारून ससुर न निसरैं देही।

इसी वक्तव्य में आगे जायसी लिखते हैं –

> झूलि लेहु नैहर जब ताइ। फिर नहिं दूलर देइहि साई।।

जायसी के सम्मुख भारतीय नारी का आदर्श है। जायसी सजग हैं कहीं ससुराल के भय से लोकरीति का उल्लंघन न हो इसीलिए पद्मावती को सखियाँ समझाती है। स्त्री का निर्वाह तो पति के घर में ही है यही जीवन का सत्य है –

> माता पिता वियाही सोई। जनय निबाह पियहि सो होइ।

पद्मावत विवाह के पश्चात् जायसी ने जीवन में संयोग तथा विप्रलम्भ दोनों प्रकार के शृंगारों का वर्णन किया गया। यद्यपि पद्मावत में विप्रलंभ शृंगार का प्राधान्य है। फिर भी वियोग के वर्णन में कवि ने जिस कुशलता का परिचय दिया है, उसी कुशलता का परिचय संयोग के वर्णन में भी दिया है। संयोग श्रृंगार के वर्णन के लिए जायसी षड्ऋतु वर्णन का सहारा लिया है। और विप्रलंभ के लिए बारहमासे का। भारतीय साहित्य में इन दोनों की परंपरा रही है। बारमासे की परंपरा अपभ्रंश में देखने को मिलती है। विनयचंद्र सूरि कृत 'नेमिनाथ चतुष्पादिका' ईसवी सन की तेरहवीं शताब्दी की रचना में राजमती के विरह-वर्णन के लिए बारहमासे को अपनाया गया है। इसी प्रकार 'धर्मसूरि स्तुति' में भी बारहमासा मिलता है लेकिन इसमें कवि ने नायिका के विरह वर्णन के स्थान पर अपने गुरु को याद किया है। प्राकृत की अंगविज्या में बारहमासे का फुटक्ल वर्णन मिलता है। नागमती के विरह वर्णन के लिए जायसी ने बारमासे का सहारा लिया है। हिंदी साहित्य में ऐसा अद्भुत 'बारहमासा' अन्यत्र कम देखने को मिलता है। नागमती के विरह वर्णन में तो जायसी मानो आध्यात्मिकता को भूल ही गए हैं। नागमती आदर्श पत्नी हैं। उसके अंतर का निगूढ और गंभीर प्रेम जायसी के विरह वर्णन में प्रकट हुआ है। साधारण स्त्री के सुख-दुख को ध्यान में रखते हुए ही जायसी ने नागमती के विरह का वर्णन कारुणिक ढंग से किया है।

जायसी ने बारहमासे का प्रारंभ आषाढ़ मास से किया है। वैसे कई बारहमासों में आषाढ़ मास से बारहमासे का प्रारंभ नहीं किया गया है। कुछ में आषाढ़ मास से ही शुरू होता है। 'मैनासत' में आषाढ़ मास से बारहमासे का प्रारंभ होता है, लेकिन 'वीसलदेव रास' में कार्तिक से तथा उसमान की चित्रावली में चैत्र से। विनयचंद्र सूरि कृत 'नेमिनाथ चतुष्पदिका' में बारहमासे का प्रारंभ श्रावण मास से किया गया है। अपभ्रंश की रचना 'धर्मसूरि स्तुति' में भी बारह मासे का प्रारंभ श्रावणमास से होता है।

जायसी बारहमासा का आरंभ आषाढ़ मास से करते हैं। इसके पीछे शुक्ल जी का तर्क संगत लगता है कि रत्नसेन गंगा दशहरे के दिन चित्तौड़ गढ़ से

प्रस्थान करता है -दसवें दावै कै गा जो दसहरा। पलटा सोइ नाव लेइ महरा।।

इसका कारण जो भी रहा हो जायसी के वर्णन में तो ऐसा लगता है कि बारहमासे में भी जायसी ने उत्तर प्रदेश के ग्रामीण जीवन को ध्यान में रखा। यह कहें कि जायसी पर इस बारहमासे के वर्णन में ग्रामीण लोक जीवन का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि जेठ असाढ़ी का वर्णन करते हुए यह भूल गए कि नागमती रानी हैं। साधारण गृहस्थों में वर्षा में छप्पर लाने की चिंता गहरी हो गई है –

तपै लागि अब जेठ असाढ़ा। मोहि पिउ बिन छाजनि भई गाही
तन नितउर भा, झूरों बरी, भइ बरखा, दुख आगरि जरी।।
अद्रा लाग, लागि भुँह लेइ। मोहि बिनु पिउ को आदर देई।
सावन बरस मेह अति पानी। भरनि परी, हौं विरह झुरानी।।

जायसी का यह ऋतुवर्णन परंपरा का निर्वाह मात्र नहीं है अपितु कवि राजमहिषी को सामान्य स्थिति से गुजारता है, प्रकृति के ऋतु चक्र बनाते हुए जायसी नागमती को सामंती समाज और ग्राम परिवेश की मिली जुली भूमि प्रस्तुत करते हैं। नागमती को वर्ष भर ऋतु चक्र से गुजारते हुए जायसी की ग्राम चेतना बराबर सजग है। प्रकृति का परिवेश सामंती सीमाओं का अतिभ्रमण करता है :जेठ का जलता संसार, वसंत में पंचम स्वर में झूमती कोयल, महकती आम मंजरी, रेंगती बीरबहुटियों आदि में ग्राम परिवेश का बोध कराते हैं और नागमती की पीड़ा सहज नारी का।

वियोग की भाँति संयोग के वर्णन में भी जायसी ने षडऋतु वर्णन उपयोग किया है। संयोग शृंगार के वर्णन में जायसी का दृष्टिकोण सांसारिकता से उठकर आध्यात्मिकता की ओर चला जाता है इसीलिए वह शरीरी होने से बच जाता है। जायसी हर समय पद्मावती में परमसत्ता होने की याद सदैव बनाए रखते हैं कि वह ही परम सत्त है, वह उसी परमसत्ता होने की याद सदैव बनाए रखते हैं कि वह ही परम सत्त है, वह उसी परमसत्ता का विलास है प्रारंभ से ही वह इसका संकेत करते चलते हैं –

'हे रानी पद्मावती में जीता सुख लोक।
तूँ सरवरि करू तासों जग जोही जेहि जोगि।'

जायसी षड्ऋतु वर्णन में सभी ऋतुओं के साथ संयोग शृंगार के चित्र खींचते हैं पर साथ ही याद दिला देते हैं जो उस परमसत्ता में सौंदर्य में अनुरक्त है उसके लिए तो सभी ऋतुएँ वसंत है यह वसंत उनकी उस लोक चेतना का पर्याय है जिसके साथ ही जीवन में आनंद है वसंत के अभाव में सभी ऋतुएँ सुहावनी नहीं हो सकती हैं यह वसंत उस प्रेम या प्रेमी का पर्याय है जिसकी खोज में यह कथा निरंतर चल रही हैं –

जिन घर कंता ऋतु भली, आव वसंत जो नित।
मुख भरि आवहि देवहरै, दुःख न जानै कित्त।

संयोग और वियोग के झूले में झूलती जायसी की इस कविता का सुंदर बिंब हमें समुद्र की लहरों के भंवर में घिरे व्यक्ति के क्षण-क्षण बदलते मनोभावों के रूप में जैसा देखने को मिलता शायद वही जीवन का यथार्थ है जिस जायसी ने अपनी कविता में प्रमाणित किया है –

परा सो प्रेम समुद्र अपारा। लहरहिं लहर हो दूबि सँभारा
बरिह भौंर होइ भाँवरि देह, खिनखिन जीउ हिलोरा लेई
खिनहिं उसास बड़ि जिउ जाई। खिनहि उठै निसरै बोराई
खिनहिं पीत खिन मुख सेता, खिनहिं चेत, खिन होइ अचेता।'

लहरों के भंवर में डूबती उतरती कविता साही के शब्दों में -अपनी समरस तन्मयता के साथ आगे बढ़ती जाती है .....ऊपर से सरल दिखने वाली घटनाएँ लहर फैलाती हुई चिंतनशीलता पूरी कथा में एक तरल विषाद-दृष्टि का सृजन करती है जिसमें मानवीय व्यापार के प्रति पीड़ा है, किंतु अवसाद नहीं, हल्का वैराग्य है लेकिन गहरी संसक्ति भी है, तटस्थता भी है, लेकिन स्पष्ट नैतिक विवेक भी है, यही वह सुगन्ध है जो फूल के मरने के बाद भी नहीं मरती और घोषणा करती है -'फूल मरै पै मरै न बासू'।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. 'पद्वामावत' वासुदेव शरण अग्रवाल, (संवत 2070) साहित्य सदन चिरगांव झांसी
2. भक्ति काव्य की भूमिका (संवत 1977) प्रेम प्रेम शंकर, राधाकृष्ण प्रकाशन
3. 'पद्मावत' संप डॉ माता प्रसाद गुप्त (संवत 1963) भारतीय भंडार प्रकाशन इलाहाबाद
4. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान (संवत 1982) लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
5. 'जायसी' विजयदेव नारायण साही (सन 1983) हिंदुस्तानी अकैडमी, इलाहाबाद
6. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल (संवत 1950), काशी नागरी प्रचारिणी सभा
7. हिंदी प्रेमाख्यान, कमल कुलश्रेष्ठ चौधरी (सन 1953) मानसिंह प्रकाशन |